HISTORY OF HINDI LITERATURE

(Adikal & Madhyakal)

I SEMESTER

BA HINDI

CU-CBCSS

(2014 ADMISSION)

Complementary course

UNIVERSITY OF CALICUT

SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION

CALICUT UNIVERSITY P.O., THENJIPALAM, MALAPPURAM, KERALA -673635

1021

UNIVERSITY OF CALICUT

SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION

Study Material

BA HINDI

I Semester

COMPLEMENTARY COURSE

History of Hindi Literature(Adikal & Madhyakal)

Prepared by :

Dr.M.Lekha,
Guest Lecturer,
Department of Hindi,
University of Calicut

Edited and Scrutinised by :

DR. N. GIRIJA
ASSOCIATE PROFESSOR OF HINDI
GOVT. ARTS & SCIENCE COLLEGE
KOZHIKODE

Lay out and Printing:

Computer Section, SDE.

©

Reserved

CONTENTS

Page

Module I

हिन्दी साहित्य का काल विभाजन,

नामकरण एवं समस्याएँ 5

Module II

आदिकाल **10**

Module III

भक्तिकाल (पूर्व मध्यकाल) **18**

Module IV

रीतिकाल (उत्तर मध्यकाल) **26**

MODULE I

हिन्दी साहित्य का काल विभाजन, नामकरण एवं समस्याएँ

साहित्य हमेशा नदी के प्रवाह की तरह गतिशील रहा है। निरंतरता ही उसकी प्रमुख विशेषता रही है। समयानुकूल उसमें परिवर्तन होते आए हैं और उसी कारण उसमें नई प्रवृत्तियों का उदय भी हुआ है।

किसी भी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन करने की सर्वाधिक उपयुक्त प्रणाली उस साहित्य में प्रवाहित साहित्य धाराओं, विविध प्रवृत्तियों के आधार पर उसे विभाजित करना है। युगीन परिस्थितियों के आधार पर साहित्य की विषय तथा शैलीगत प्रवृत्तियाँ भी परिवर्तित होती रही हैं। हिन्दी साहित्य के विषय में भी यह बात लागू हुई है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास की सामग्री 'भक्तमाल' 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वाता' आदि ग्रंथों में मिलती है। पर इनमें काल विभाजन और नामकरण की ओर कोई दृष्टि नहीं की गई थी। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन का सर्वप्रथम प्रयास फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी द्वारा हुआ था। इन्होंने फ्रेंच भाषा में लिखित अपने ग्रंथ 'इस्तवार द ला लितरेत्युर एन्दुई ए-हिन्दुस्तानी' में अंग्रेज़ी वर्ण क्रमानुसार हिन्दी और उर्दू भाषा के अनेक कवियों का परिचय दिया है। पर इन्होंने भी कालविभाजन और नामकरण की ओर ध्यान नहीं दिया था।

तासी की परंपरा को आगे बढाते हुए हिन्दी विद्वान शिवसिंग सेंगर ने 'शिवसिंग सरोज' लिखा जिसमें लगभग एक हज़ार कवियों के जीवन चरित्र और उनकी कविताओं के उदाहरण संग्रहीत किए गए हैं, पर इसमें भी कालविभाजन का कोई संकेत नहीं है।

सन् 1888 में जार्ज ग्रियर्सन के "द मोर्डन वर्नौक्युलर लिट्रेचर ऑफ हिन्दुस्तान " का प्रकाशन हुआ। सर्वप्रथम ग्रियर्सन ने प्रस्तुत ग्रंथ में कालक्रम के अनुसार साहित्यकारों का वर्गीकरण करते हुए उनकी साहित्यिक विशेषताओं का भी परिचय दिया है। हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि को अपनाते हुए भी उस ग्रंथ की रचना हुई है।

इन्होंने हिंदी साहित्य के इतिहास को निम्नलिखित ग्यारह शीर्षकों में विभाजित किया है।

1. चारण काल (1702 - 1300 ई.)

2. पन्द्रहवीं शती का धार्मिक पुनर्जागरण

3. जायसी की प्रेमकविता

4. ब्रज का कृष्ण-संप्रदाय
5. मुगल दरबार
6. तुलसीदास
7. रीति काव्य
8. तुलसीदास के अन्य परवर्ती कवि
9. 18 वीं शताब्दी
10. कंबनि के शासन में हिन्दुस्तान
11. महारानी विक्टोरिया के शासन में हिन्दुस्तान

डॉ.ग्रियसन के विभाजन में अनेक असंगतियाँ, न्यूनता एवं त्रुटियाँ होते हुए भी प्रथम प्रयास होने के कारण इसका अपना विशेष महत्व है।

आगे चलकर मिश्रबन्धुओं ने अपने 'मिश्रबन्धु-विनोद' में काल-विभाजन का नया प्रयास किया। इनका विभाजन निम्नलिखित है।

1. आरंभिक काल	-	पूर्वारंभिक काल (700 - 1343 वि.सं.)
	-	उत्तरारंभिक काल (1344 - 1444 वि.सं.)
2. माध्यमिक काल	-	पूर्वी माध्यमिक काल (1445 - 1560 वि.सं.)
		प्रौढ़ माध्यमिक काल (1561 - 1680 वि.सं.)
3. अलंकृत काल	-	पूर्वालंकृत काल (1680 - 1790 वि.सं.)
		उत्तरालंकृत काल (1791 - 1889 वि.सं.)
4. परिवर्तन काल	-	(1890 - 1924 वि.सं.)
5. वर्तमान काल	-	(1926 – से अब तक)

मिश्रबन्धुओंके पश्चात् आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने सन् 1929 में 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में नए ढंग से कालविभाजन प्रस्तुत करने का प्रयास किया। इनके काल-विभाजन में अधिक सरलता, स्पष्टता एवं सुबोधता है। अपनी विशेषता के कारण यह आज तक सर्वमान्य एवं सर्वत्र प्रचलित है। इसकी कटु आलोचना भी की गई है, फिरभी उसे संशोधित कर नया रूप देने में बहुत कम सफलता ही मिल पायी है। उनका काल विभाजन इस प्रकार है।

1. आदि काल (वीरगाथा काल)- (सं.1050 से 1375 तक)

2. पूर्व मध्यकाल (भक्ति काल) - (सं.1375 से 1700 तक)

3. उत्तर मध्यकाल (रीति काल)- (सं.1700 से 1900 तक)

4. आधुनिक काल (गध्य काल)- (सं.1900 से अब तक)

आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी के बाद डॉ.रामकुमार वर्मा का नाम भी इस दिशा में उल्लेखनीय है। उनका काल विभाजन उस प्रकार है।

1. सन्धि काल - (750 - 1000 वि.)

2. चारणकाल - (1000 - 1375 वि.)

3. भक्तिकाल - (1375 - 1700 वि.)

4. रीति काल - (1700 -1900 वि.)

5. आधुनिक काल - (1900 से अब तक)

इस परंपरा में डॉ.नगेन्द्र का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होंने हिन्दी साहित्य का काल विभाजन तथा नामकरण इस प्रकार दिया है -

1. आदि काल - (7 वीं शती के मध्य से 14 वीं शती के मध्य तक)

2. भक्ति काल - (14 वीं शती के मध्य से 17 वीं शती के मध्य तक)

3. रीति काल - (17 वीं शती के मध्य से 19 वीं शती के मध्य तक)

4. आधुनिक काल - (19 वीं शती के मध्य से अब तक)

अ) पुनर्जागरण काल (भारतेन्दु काल) (सं.1877 - 1900 ई.)

आ)जागरण-सुधार काल (द्विवेदी काल)(सं.1900 - 1918 ई.)

इ) छायावादोत्तर काल

१. प्रगति-प्रयोग काल (सं.1938 - 1953 ई.)

२. नवलेखन काल (सं.1953 ई. से अब तक)

हिन्दी साहित्य के नामकरण

हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालखण्डों के नामकरण को लेकर विद्वानों में मतभेद है। मुख्यता दसवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक आरंभिक कालखण्ड (आदिकाल) और सत्रहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक के कालखण्ड (रीतिकाल) के नामकरण को लेकर ही अधिक मतभेद है।

अ) दसवीं शती से चौदहवीं शती तक के कालखण्ड का विभिन्न विद्वानों द्वारा किया गया नामकरण

चारणकाल	-	ग्रियर्सन
प्रारंभिक काल	-	मिश्रबन्धु
वीरगाथा काल	-	आचार्य रामचन्द्र शूक्ल
सिद्धसामंत काल	-	राहुल सांकृत्यायन
बीजवपन काल	-	महावीरप्रसाद द्विवेदी
वीरकाल	-	विश्वनाथप्रसाद मिश्र
आदिकाल	-	हज़ारी द्विवेदी
संधिकाल एवं चरणकाल	-	डॉ.रामकुमार वर्मा

आ) चौदहवीं शती से सत्रहवीं शती तक के कालखण्ड का नामकरण

आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने सं 1375 से लेकर 1700 ई. तक को कालखण्ड को पूर्वमध्यकाल की सेज़ा से अभिहित किया है। इस युग के साहित्य में भक्ति की प्रचुरता को देखकर शुक्लजी द्वारा दिया गया 'भक्तिकाल' नाम परवर्ती सभी विद्वानों द्वारा स्वीकार किया गया।

इ) सत्रहवीं शती से उन्नीसवीं शती तक के कालखण्ड (रीतिकाल) के नामकरण संबधी मतभेदः

आचार्य शुक्लजी ने सं 1700 से लेकर 1900 ई. तक के समय को उत्तर मध्यकाल में रीतिग्रन्थों या काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की प्रचुरता है। इसलिए शुक्लजी तथा वात के कई विद्वानों ने इसे 'रीतिकाल' नाम दिया। इस काल के नामकरण को लेकर हुए मतभेद इस प्रकार है।

अलंकृत काल	-	मिश्रबन्धु
रीतिकाल	-	आचार्य रामचन्द्रशुक्ल
कलाकाल	-	रमाशंकर शुक्ल रसाल
श्रृंगार काल	-	पं.विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

हिन्दी साहित्य के उत्तरमध्यकाल को 'रीतिकाल' नाम से पुकारने के विरुद्ध आवाज़ बुलंद करनेवाले व्यक्ति थे, 'हिन्दी साहित्य का अतीत' के रचयिता आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र। उनके अनुसार 'रीतिकाल' नाम देते पर उस युग के धनानंद जैसे रीतिमुक्त कवियों को बाहर निकालना पड़ेगा। उनके मतानुसार युग की सभी रचनाओं को समेटते हुए 'श्रृंगार काल' नाम देना उचित होगा। डॉ.नगेन्द्र के अनुसार रीतिमुक्त कवियों ने भी थोडी मात्रा में रीति विषयक रचनाएँ की हैं। इसलिए वे भी 'रीतिकाल' नाम की सीमा में आ जाते हैं। गणपति चन्द्र गुप्त ने 'रीतिकाल' के काव्यशास्त्रपरक ग्रंथों की धारा को 'शास्त्रीय मुक्तक धारा' नाम दिया। डॉ.रमाशंकर शुक्ल रसाल के अनुसार 'रीतिकाल' के लिए 'कलाकाल' नाम ही उचित है क्योंकि रीतिकाल में काव्य के कथ्यपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष की प्रधानता रही। रीतिकाव्य की अलंकरण की प्रवृत्ति को देखकर मिश्रबन्धुओं ने इसे 'अलंकृतकाल' कहा। राम बहोरी शुक्ल और भगीरथ मिश्र ने इस युग को 'रीतिश्रृंगार काल' नाम दिया।

ई) 19 वीं शती से अब तक के कालखण्ड का नामकरण:

आधुनिक काल में हिन्दी गद्य साहित्य का अत्यंत विकास हुआ। इसलिए शुक्लजी ने इसे 'गद्यकाल' नाम दिया जो समीचीन है। कई विद्वानों ने आधुनिकयुग के प्रथमोत्थान को 'भारतेन्दु युग' और द्वितीय उत्थान को 'द्विवेदी युग' के नाम से पुकारा है। लेकिन डॉ. नगेन्द्र 1857 से 1900 तक के काल को 'पुनरजागरण काल' तथा 1900 से 1918 तक के काल को 'जागरण सुधार काल' कहा है। डॉ.गजपति चन्द्र गुप्त ने दोनों को मिलाकर आदर्शवादी काव्यधारा नाम दिया है। 1918 से 1938 तक का समय डॉ.नगेन्द्र के लिए 'छायावादी युग' है तो गणपति चन्द्र गुप्त के मत में स्वच्छंदतावादी काव्यधारा है। 1938 से 1953 तक नगेन्द्र के अनुसार 'प्रगति-प्रयोग काल' है तो गणपति चन्द्र गुप्त कमशः इसे 'सामाजिक यथार्थवादी काव्यधारा' तथा 'वैयक्तिक यथार्थवादी काव्यधारा' तथा 'वैयक्तिक यथार्थवादी काव्यधारा' कहते है। 1953 से अब तक के कालखण्ड को नगेन्द्र ने 'नवलेखन काल' कहा।

प्रशन :- 1) हिन्दी साहित्य के कालविभाजन संबंधी मतभेदों को समझाइए।

2) रीतिकाल के नामकरण के संबंध में क्या-क्या तर्क-वितर्क हुए ?

MODULE II

आदिकाल

हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल को आदिकाल कहा जाता है। यह हिन्दी का सबसे विवादग्रस्त कालखण्ड भी है। अधिकांश आदिकालीन ग्रंथों का उपलब्ध न होना, प्रामाणिकता में संदिग्धता कालनिर्धारण में सामंजस्य न बैठना आदि कई कारणों से हिन्दी साहित्य का यह समय साहित्य के विद्धानों, आचार्यों के लिए अत्यंत चुनौतीपुर्ण भी रहा है।

आदिकालीन परिस्थितियों पर विस्तृत लेख लिखिए :

युगीन साहित्य का स्वरूप जानने के लिए तत्कालीन मानव-समाज की विभिन्न परिस्थितियों को जानना महत्वपूर्ण है। इस दिशा में आदिकालीन राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक सांस्कृतिकतथा साहित्यिक परिस्थितियों को जानना ज़रूरी है।

राजनीतिक परिस्थिति :

भारतीय इतिहास का यह युग राजनीतिक दृष्टि से अव्यवस्था, गृहकलह तथा पराजय का युग है। सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद उत्तरी भारत से केन्द्रीय शक्ति का हास हो गया और सत्ता शिथिल हो गयी। राजपुत राजाओं के बीच लड़ाई आम बात हो गई। दिल्ली में तुर्कों की सलतनत स्थापित हुई।

राजनितिक रूप से यह पतन का समय था। एक ओर देशी राजाओं के अत्याचारों से पीडित जनता दुसरी ओर विदेशी आक्रमणकारियों से भी पीड़ित थी। इसके फलस्वरूप जनता में कुछ लोग वीरता के साथ लड़ते हुए जीना चाहते थे तो, कुछ आध्यात्मिक जीवन में अभय लेना चाहते थे। कुछ लोग फिर भी जीवन का आनन्द लेना चाहते थे। इस समय प्राप्त साहित्य में इन तीनों धाराओं के मानसिक स्थिति का प्रकाशन हुआ है।

धार्मिक परिस्थिति

इस काल में वैदिक तथा पौराणिक धर्म के विविध रूपों के साथ बौद्ध और जैन धर्म भी अपने वास्तविक आदर्शों से दूर हट गए। नैतिक स्तर गिरा और धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार होने लगा। बौद्ध धर्म मन्त्र -तंत्रों की सिद्धियों के चक्र में पड़कर रह गया। वह अब महायान, वज्रयान, मन्त्रयान आदि कई रूपों में विभाजित हुआ। बौद्धों के अतिरिक्त शैवों, शक्तों तथा जैनों में भी धर्म के विकृत रूपों का प्रचार हुआ। बाद में नाथ संप्रदाय के संतों ने धर्म को वामाचारों से मुक्त करके उसका उद्धार करना चाहा। इसी दिशा में कार्य करनेवाले आचार्य शंकर, रामानुज, निंबार्क आदि आचार्यों के आध्यात्मिक सिद्धान्तों से भी लोग प्रभावित होने लगे। लेकिन इनका प्रभाव परवर्ती युग में ही स्पष्ट दिखाई देता है। इसी अशान्ति के वातावरण में इस्लाम धर्म का भी प्रवेश भारत में हो चुका था।

सांस्कृतिक परिस्थिति

आदिकालीन सांस्कृतिक परिदृश्य में हिन्दू-मुसलमान संस्कृतियों का परस्पर मिलन हम स्पष्ट देख सकते हैं। हर्षवर्धन के समय में हिन्दू संस्कृति सभी दृष्टियों से अपनी श्रेष्ठता की चरम सीमा पर थी। सभी कलाओं में धार्मिक भावनाओं की अभिव्यंजना थी। हिन्दु-मुस्लिम संस्कृतियाँ एक दूसरे को विरोध और शंका की दृष्टि से देख रही थी। उत्सव, त्योहार, भोजन, वस्त्र, मनोरंजन आदि सभी में यह प्रभाव दिखाई पड़ता है।

सामाजिक परिस्थिति

राजनीति, धर्म तथा संस्कृति आदि क्षेत्रों में हुए परिवर्तन के कारण लोगों को धर्म तथा शासन दोनों में आश्रय नहीं मिल रहा था। जाति-पाँति के बन्धन कठोर होते गये। कई तरह के अन्धविश्वासों का प्रचलन भी जनता के बीच में होने लगा। राजा तथा उच्च वर्ग विलासित भरी ज़िन्दगी जी रहे थे। शिक्षा, शास्त्र-ज्ञान तथा साहित्य से साधारण जनता का कोई संबंध नहीं था। नारी केवल उपभोग की वस्तु थी।

साहित्यिक परिस्थिति

आदिकाल में साहित्य रचना की तीन धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं। प्रथम धारा संस्कृत साहित्य की थीं। यह काल राजनीतिक दृष्टि से गृहकलह का काल होते हुए भी इस जुग में ज्योतिष, दर्शन, साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में संस्कृत संपन्न थी। आनंद वर्धन, कुन्तक, अभिनवगुप्त, क्षेमेन्द्र आदि अनेक आचार्य इसी समय जीवित थे।

2. दूसरी धारा का साहित्य प्राकृत एवं अपभ्रंश में लिखा जा रहा था।

3. तीसरी धारा हिन्दी भाषा में लिखे जानेवाले साहित्य की थी। केवल इसी धारा में तत्कालीन परिस्थितियों की प्रतिक्रिया हो रही थी।

आदिकाल के साहित्य का वर्गीकरण

आदिकाल के साहित्य को अध्ययन की सुविधा केलिए निम्नांकित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. सिद्ध साहित्य
2. जैन साहित्य
3. नाथ साहित्य
4. रासों साहित्य
5. लौकिक साहित्य
6. गद्य रचनाएँ

1. सिद्ध साहित्य

भारतीय साधना के इतिहास में 8 वीं शती में सिद्धों की रास्ता देखी जा सकती है। बौद्ध धर्म के पतित परंपरा में ये सिद्ध आते हैं। बुद्ध के निर्वाण के बाद बोद्ध धर्म की दो शाखाएँ विकसित हुईं- हीनयान और महायान। हीनयान में बौद्ध धर्म के चिन्तन पक्ष की प्रधानता है, महायान में कर्मकाण्ड की प्रमुखता है। शंकर के शेव धर्म के प्रभाव को रोकने के लिए तथा जनता को अपने आश्रय में रखने केलिए महायान ने मन्त्र, तन्त्र और धार्मिक आडंबरों का आश्रय लिया। इसप्रकार महायान मन्त्रयान बन गया। मन्त्रों द्वारा सिद्धि चाहनेवाले 'सिद्ध' कहलाए। मन्त्रयान से वज्रयान और सहजयान -दो धाराओं का विकास हुआ और वज्रयान के साधक ही 'सिद्ध' कहलाए गए।

वज्रयानी सिद्ध लौकिक सुखों का भोग करते थे। शरीर उनकी साधना का केंद्र है। उनमें अनियन्त्रित भोग वासना थी। सुरा, सुन्दरी आदि भोग के उपकरणों को मोक्ष का साधन मानते थे। सिद्धों ने बौद्ध धर्म के प्रचार केलिए जो साहित्य जन-भाषा में लिखा, वह हिन्दी के सिद्ध साहित्य नाम से अभिहित किया गया। राहुल सांकृत्यायन ने चौरासी सिद्धों के नामों का उल्लेख किया है, जिनमें सिद्ध सरहपा से यह साहित्य आरंभ होता है।

सरहपा :

सरहपा हिन्दी के प्रथम कवि माने जाते हैं। वे सरोजव्रज, राहुलभद्र आदि नामों से भी जाने जाते हैं। इनके द्वारा रचित 32 ग्रंथ माने गये हैं, जिनमें 'दोहाकोश' प्रसिद्ध है। उनकी भाषा सरल एवं गेय है। उनकी चिंतन पद्धति में धर्म की परंपरागत रुढियों और बन्धनों को तोड़ने की विद्रोही प्रवृत्ति मिलती है।

शबरप्पा :

शबरप्पा ने सरहपा से ज्ञान सिया था। शबरों के समान जीवन बिताने के कारण य शबरप्पा कहलाए। इनकी प्रसिद्ध रचना है, 'चर्यापद'। ये मायामोह त्यागकर सहज जीवन पर बल देते हैं।

लूइपा:

वे शबरपा के शिष्य थे। चौरासी सिद्धों में इनका स्थान सबसे ऊँचा माना जाता है। इनकी कविता में रहस्य भावना की प्रमुखता हैं।

डोंबिपा :

ये मगध के क्षत्रिय थे। उनकी इक्कीस रचनाएँ हैं। इनमें 'डोम्बीगीतिका', 'योगाचार्य' और 'अक्षरद्वकोपदेश' मुख्य हैं।

कण्हपा :

सिद्धों में कण्हपा सबसे अथिक पढ़े-लिखे थे। परिमाण में सबसे अधिक कवितायें इनकी मानी जाती है। जालन्धरपा इनके गुरु थे। इनके ग्रंथों की संख्या 74 मानी जाती है। इन्होंने शास्त्रीय रुढ़ियों का खण्डन किया है।

कुक्करिपा :

कपिलवस्तु के ब्राह्मण वंश में कुक्करिपा का जन्म हुआ। इनका सोली ग्रंथ मिलते हैं।

जैनसाहित्य

आदिकाल की उपलब्ध सामग्री में सबसे अधिक ग्रंथों की संख्या जैन ग्रंथों की है। जैन धर्म के प्रवर्त्तक महावीर स्वामी हैं। बौद्धों की तरह इन्होंने भी संसार के दुःखों की ओर बहुत ध्यान दिया। जैन धर्म के मूल सिद्धांत चार बातों पर आधारित हैं।-अहिंसा, सत्य भाषण, आस्तेय और अनासक्ति। आगे चलकर जैन धर्म दिगंबर और श्वेतांबर- दो रूपोंमें बँट गया। हिन्दी के पश्चिमी क्षेत्रों में जैन साधुओं द्वारा धर्मप्रचार केलिए जो साहित्य रचा गया, वह जैन साहित्य के नाम से जाना जाता है। जैन कवियों ने जनसामान्य को सदाचार के सिद्धान्तों को सिखाने के लिए चरित काव्य, कथात्मक काव्यस रास ग्रंथ, उपदेशप्रधान आध्यात्मिक ग्रंथों की रचना की।

जैन कवियों ने आचार, रास, पाश, चरित आदि विभिन्न शेलियों में साहित्य लिखा है, लेकिन जैन साहित्य का सबसे अधिक लोकप्रिय रूप 'रास' ग्रंथ माने जाते हैं। यह रास ग्रंथ वीरगाथा रासों से अलग है। रास का श्रावक लोग रात के समय गायन करते थे। इस रास में जैन तिर्थकरों के जीवनचरित, वैष्णव अवतारों की कथाएँ तथा जैन आदर्शों का प्रतिपादन हुआ करता था। हिन्दी में इस परंपरा का प्रवर्त्तन जैन साधु शालीभद्र सूरी द्वारा लिखित 'भरतेश्वर वाहुवली रास' से माना जाता है।

प्रमुख रूप से जैन कवि दो विभागों में आते है :

1. प्रवन्ध काव्य रचना करनेवाले

2. मुक्तक रचनाकर

प्रबन्ध काव्य रचनाकारों में स्वयंभू, पुष्पदन्त एवं धनपाल आते हैं।

स्वयंभू

आठवीं शताब्दी के कवि स्वयंभू ने प्रबन्ध काव्यों की रचना की है। 'पउम चरिउ' (पद्म चरित) 'टिठजेमी चरिउ' (अरिष्टमेनि चरित) उनके प्रमुख प्रबंध काव्य हैं। छन्द शास्त्र से संबधित स्वयंभूछन्दस् की रचना भी उन्होंने की है। पउम चरिउ में संस्कृत महाकाव्यों की रचना संवंधी नियमों का पालन किया गया है। 'पउम चरिउ' राम की कथा है। स्वयंभू ने जैन धर्म के प्रचार के लिए राम कथा को परिवर्तित करके उसमें नए प्रसंगों को जोड़ा भी है। इस कारण से स्वयंभू को 'अपभ्रंश का वात्मीकि' कहा गया है। 'अरिष्टनेमी' चरित में भी रामकी कथा मिलती है।

पुष्पदंत

दसवीं शती में जीवित पुष्पदंत जैन कवियों में प्रमुख हैं। स्वभाव से अभिमानी होने के कारण इनको अभिमान मेरु भी कहा गया है। उनका प्रसिद्ध काव्य महापुराण है। इस काव्य के आदि पुराण खण्ड में अनेक जैन तिर्थकरों तथा महापुरुषों की यशगाथा है। उत्तर पुराण खण्ड में रामायण और महाभारत की कथा है। इन्हें 'अपभ्रंश भाषा का व्यास' कहा जाता है। पुष्पदंत ने अपने साहित्य में ब्राह्मणों का खुलकर विरोध किया है।

धनपाल

लौकिक कथाओं के माध्यम से धर्मप्रचार करनेवाले जैन कवियों में धनपाल का नाम आता है। उनका 'भविसहत कहा' नामक काव्य वहुत प्रसिद्ध है। इसमें भविदत्त नामक व्यापारी की कथा है।

जैन साहित्य के मुक्तक रचनाकारों में जोश्न्दु और मुनिरामसिंह प्रमुख हैं।

जोश्न्दु :

जोश्न्दु की रचना है, 'परमार्थ प्रकारों' 'यागसार' उनका दुसरा काव्य है। इनमें आध्यात्मिकता का वर्णन हुआ है।

मुनि रामसिंह

उनका प्रसिद्ध काव्य पारहुड़ दोहा है। उसमें कवि ने धार्मिक विचारों का चित्रण किया है।इसके अलावा आचार्य देवसेन का 'श्रोवकाचार', शालीभद्र सूरि का 'भरतेश्वर बाहुबली रास', आसगु कवि का 'चन्दनबाला रास', विजयसेन सूरी का 'रेवतंगिरि रास' आदि महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

नाथ साहित्य

सिद्धों की वाममार्गी योगप्रधान योग-साधना की प्रतिक्रिया के रूप में आदिकाल में नाथपंथियों की हठयोग साधना आरंभ हुई। राहुल सांकृत्यायन नाथ पंथ को सिद्धों की परंपरा का विकसित रूप मानते हैं। इस पंथ को चलानेवाले मत्स्येन्द्र नाथ तथा गोरखनाथ माने गए हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा ने नाथ पंथ का चरमोत्कर्ष बारहवीं से चौदहवीं शताब्दी के अन्त तक माना है। उनके अनुसार नाथ पंथ से ही हिन्दी के भक्तिकाल के सन्त-मत का विकास हुआ था, जिसके प्रथम कवि कबीर थे। सिद्ध-गण नारी-भोग में विश्वास करते थे, किन्तु नाथपंथी उसके विरोधी थे।

गोरख नाथ

गोरशनाथ नाथ साहित्य के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। वे सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य थे। उन्होंने सिद्धों के मार्ग का विरोध किया था। उनके अनुसार आदिनाथ स्वयं शिव थे। ऐसा माना जाता है कि तेरहवीं शती के आरंभ में गोरखनाथ ने साहित्य की रचना आरंभ की थी। उनकी ग्रन्थों की संख्या 40 मानी जाती है। उनकी रचनाओं का संकलन है 'गोरखबानी' गोरखनाथ ने अपनी रचनाओं में गुरुमहिमा, इन्द्रिय निग्रह, प्राण-साधना, वैराग्य, मनः साधना, कुण्डलिनी-जागरण, शून्य-समाधि आदि का वर्णन किया है।

रासो साहित्य (वीरगाथा साहित्य)

इन काव्यों में विषय वस्तु मूलतः राजाओं के चरित तथा प्रशंसा संबंधित रहती है। ये अपभ्रंश प्रभाव से मुक्त देशी भाषा में लिखी गई है। इनकी भाषा राजस्थानी मिश्रित हिन्दी है। राजपूत राजाओं के दरबारी कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में उनकी वीर गाथाएँ गायी थीं। ये चारण कवि राजा के साथ लड़ाई भी करते थे। रास या रासक नामक छंद में लिखे गये थे काव्य गेय हैं। इनको रासो काव्य कहते हैं। चारण कवियों ने प्रबंध तथा मुक्तक दोनों प्रकार की रचनाएँ की हैं।

प्रवन्ध काव्य

खुमाण रासो : इसके रचनाकार हैं, दलपति विजय। लेकिन इसकी प्रामाणिकता संदिगद्ध है। आचार्य शुक्ल ने इसे नवीं शताब्दी की रचना मानी है। क्योंकि इसमें चित्तौड़ के महाराजा खुमाण के युद्धों का वर्णन है। यह पाँच हज़ार छंदों का विशाल काव्य ग्रंथ है।

पृथ्वीराज रासो :

आदिकाल के वीरकाव्यों में इसका स्थान सर्वश्रेष्ठ है। इसके रचयिता हैं, चंद बरदाई। अधिकतर विद्वानों ने चंद बरदाई को हिन्दी का पहला महाकवि माना है। प्रसिद्ध इदिहासकार तासी ने चंद को पृथ्वीराज का समकालीन माना है। चंद पृथ्वीराज का सहयोगी एवं मित्र था। काव्य, साहित्य, छन्दशास्त्र, ज्योतिष, पुराण, नाटक आदि में उनका पूर्ण अधिकार था। छप्पय छंद पर उनका विघेष अधिकार था।

पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज चौहान की वीरतापूर्ण जीवन की विस्तृत गाथा है। वीर और श्रृंगार रस की दृष्टि से यह रचना अत्यंत महत्वपूर्ण है। नारी के नखशिखवर्णन में भी चन्द सफल हुए हैं। शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमण में पराजित पृथ्वीराज की आँखें गोरी ने तोड़ी थी। फिर चंद के संकेत पर पृथ्वीराज ने शब्दभेदी बाण चलाकर गोरी का वध किया था। पूथ्वीराज रासो पिंगल शैली में अपभ्रंश मिश्रित राजस्थानी में लिखा गया प्रबंध काव्य है।

पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता के संबंध में भी विद्वानों के बीच मतभेद है। पृथ्वीराज रासो को सर्वथा अप्रामाणिक माननेवालों के मत में रासो पृथ्वीराज की समकालीन रचना नहीं हे तथा चंद का कोई अस्तित्व भी नहीं था। इस मत को माननेवाले विद्वानों में कविराज श्यामलदास, कविराज मुरारीदान, डॉ.वूलर, डॉ.रामकुमार वर्मा, श्री.रामचन्द्र शुक्ल, मंशी देवी प्रसाद आदि शामिल हैं।

द्वितीय वर्ग रासो को प्रामाणिक रचना मानते हैं। इसके समर्थक हैं, श्यासुन्दरदास, मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या, मिश्रबन्धु तथा मोतिलाल मेनारिया आदि।

तृतीय वर्ग इसे अर्द्ध प्रामाणिक रचना मानते हैं। इनके अनुसार पृथ्वीराज के दरबार में चंद नामक कवि था, जिसने रासो की रचना की है; लेकिन मूल कृति अप्राप्य है। इस पक्ष के समर्थक हैं: डॉ.सुनीति कुमार चैटर्जी, मुनि जिनविजय, डॉ.दशरथ शर्मा आदि।

मुक्तक रासो काव्य

बीसलदेव रासो : इसकी रचना नरपति नाल्ह ने की है। इसकी रचना १२१२ में हुई थी। बीसल देव रासो का नायक विग्रह राजा चतुर्थ हैं। यह एक विरह काव्य हैं, इसमें श्रृंगार की प्रधानता है।

हम्मीर रासो :

इसकी कोई प्रामाणिक प्रति उपलब्ध नहीं है। प्राकृत पैंगलम में केवल उल्लेख मात्र है। शारंगधर इसके रचनाकर माने जाते हैं।

परमाल रासो

यह आल्हाखंड नाम से भी प्रसिद्ध है। यह एक गेय लोक काव्य है। इसके रचयिता कवि जगनिक हैं। इसमें आल्हा और ऊदल नामक दो वीरों की वीरता का वर्णन है।

लौकिक साहित्य

संदेश रासक :

लौकिक साहित्य के अंदर्गत अष्दुर रह्मान का संदेश रासक अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह एक ख्रण्ड काव्य है जो लोक जीवन पर आधारित है। यह एक विरह काव्य है। विजयनगर की एक युवती जो प्रिय के विरह में दुख्री थी, राजमार्ग से जानेवाले को रोककर अपने प्रिय तक संदेश पहुँचाने के लिए आग्रह करती थी। प्रिय धनमोह के कारण उसे त्याग चुका है। नायिका जब संदेश देकर पथिक को बिदा करती है, तब प्रिय आता हुआ दिख्राई देता है। इसमें दोहा छंद का सुंदर प्रयोग हुआ है।

प्राकृत पैंगलम :

इसमें विद्याधर, सारंग, बब्बर, जज्जल आदि कई कवियों की रचनाओं को संकलित किया गया है। भाषा शास्त्र की दृष्टि से इसका अध्ययन होता है।

ढोला-मारू-रा-दूहा :

यर मूलतः ग्यारहवीं शती में रचा गया लोक-भाषा काव्य है। इसमें ढोला नामक राजकुमार और माख्रणी नामक राजकुमारी की प्रेम-कथा का वर्णन है। दोहों में इसकी रचना की गई है। ये दोहे श्रृंगार रस की जो परंपरा आरंभ करते हैं, वह आगे चलकर बीहारी के काव्य में प्रतिफलित हुई।

कुछ अन्य कवि

विद्यापति :

संस्कृत, अवह्ट्ठ, मेथिली भाषाओं में समान अधिकार रख्रनेवाले पंडित थे, विद्यापति। वे हिन्दी में भक्ति और श्रृंगार के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। कीर्तिलता, कीर्तिपताका, पदावली उनकी प्रमुख्र रचनाएँ हें। विद्यापति ने पदावली में राधाकृष्ण की प्रणय लीलाओं का अत्यंत हृदयहारी वर्णन किया है। श्रृंगार के दोनों पक्षों - संयोग और वियोग - का उन्होंने यहाँ प्रयोग किया है।

अमीर ख्रुसरो:

वे ख्रड़ी बोली हिन्दी के प्रथम कवि माने जाते हैं। इनका पूरा नाम अबुल हसन था। वे मुगल दरबार के कवि थे। उन्होंने 99 ग्रन्थों का सृजन किया है, इनमें 'किस्सा चाहा दरवेश' और 'ख्रालिकबारी' विशेष महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए भी प्रयत्न किया है।

गद्य रचनाएँ

आदिकाल में काव्य-रचना के साथ-साथ गद्य रचनाओं का भी प्रयास हुआ था। राउलवेल 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण', 'वर्णरत्नाकर' इस संदर्भ में उल्लेख्रनीय हैं।

राउलवेल	-	रोडा
उक्ति व्यक्ति प्रकरण	-	दामोदर शर्मा
वर्ण रत्नाकर	-	ज्यतिरीश्वर ठाकुर

वीरगाथा काव्यों की सामान्य प्रवृत्तियाँ लिखिए ।

सम्राट हर्षवर्धन के निधन के बाद भारत में कोई केंद्रीय शासन नहीं रहा। इससे लाभ प्राप्त कर कई विदेशो आक्रमणकारियों ने यहाँ के राजाओं से युद्ध किया, साथ ही, गृह कलह भी बढ़ता गया। इस कालखण्ड में राजाश्रयी कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं के वीरता का वर्णन करते हुए साहित्य रचना की थी। ये काव्य रचनाएँ बाद में वीरगाथा के नाम से प्रसिद्ध हुई। इनकी सामान्य विशेषताएँ निम्न हैं:

1. संदिग्ध रचनाएँ : प्रायः सभी वीरगाथाओं की प्रामाणिकता में संदेह है। इनमें परिवर्तन और परिवर्धन कार्य प्रजुर मात्रा में हुआ है।

2. ऐतिहासिकता का अभाव : वीरगाथाओं के प्रसिद्ध चरित नायक का वर्णन शुद्ध इतिहास की कसौटी पर पूरा नहीं उतरता। इनमें इतिहास की अपेक्षा कल्पना का बाहुल्य है।

3. युद्ध वर्णन : युद्धों का वर्णन वीरगाथाओं का प्रमुख विषय है। क्योंकि चारण कवि एक हाथ में लेखनी और दूसरे हाथ में तलवार लेकर युद्ध करते थे।

4. सांस्कृतिक राष्ट्रीयता : चारण कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा की है। इनमें राष्ट्रीयता का अभाव था।

5. वीर और श्रृंगार रस : वीरगाथाओं में वीर तथा श्रृंगार का अद्‌भुत मिश्रण है। युद्धों का मूल कारण नारी थी। अतः श्रृंगार रस का भी इसमें जमकर वर्णन मिलता है।

6. प्रकृति चित्रण : वीरगाथा काव्यों में प्रकृति का आलंबन और उद्दीपन दोनों रूपों का चित्रण है।

7. रासो शब्द : मूल रूप से रासक एक छन्द है जिसका प्रयोग अपभ्रंश साहित्य में मिलता है। वीरगाथाओं में काव्य शब्द के पर्यायवाची शब्द के रूप में इसका प्रयोग हुआ है।

8. काव्य के दो रूप : वीरगाथाएँ प्रबंध और मुक्तक दो रूपों में मिलती है।

9. जनजीवन से संपर्क नहीं : वीरगाथाओं में सामंती जीवन का ही चित्रण हुआ है। आम जनता इससे दूर है।

10. छन्द की विविधता : वीरगाथाओं में अपने पूर्ववर्ती काल से भिन्न छंदों की विविधता दिखाई पड़ती है।

11. डिंगल और पिंगल भाषा : साहित्यिक राजस्थानी भाषा को डिंगल कहते हैं। साहित्यिक अपभ्रंश मिश्रित ब्रज को पिंगल कहा जाता है।

प्रश्न :

1. आदिकालीन परिस्थितियाँ लिखिए।

2. रासो काव्यों की विशेषताएँ क्या-क्या हैं ?

3. टिप्पणी लिखिए

(1). सिद्ध साहित्य (2). लौकिक साहित्य (3). गोरखनाथ

MODULE III

भक्तिकाल (पूर्व मध्यकाल)

हिन्दी साहित्य का पूर्व मध्यकाल भक्तिकाल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस समय भक्ति विषयक ग्रंथों की रचना प्रचुर मात्रा में हुई थी। उस समय के ग्रंथों में भक्ति के विविध रूप देख सकते हैं। प्रमुख रूप से इस काल में भक्ति की दो धाराएँ बह चली थी- निर्गुण और सगुण। निर्गुण भक्ति के प्रवर्त्तक ईश्वर को निराकार और निर्गुण मानते थे। उनमें एक विभाग ऐसा था जो 'ज्ञान' तत्व को महत्वपूर्ण मानते थे (ज्ञानाश्रयी शाखा)। उनकी भक्ति में ब्रह्म, जीव आदि तत्वों का चिन्तन मुख्य रूप से आता है। कबीर जैसे संत कवि उस परंपरा में आते हैं। 'प्रेम' तत्व को ईश्वर माननेवाले निर्गुण भक्ति के अन्य प्रवर्त्तकों का विभाग है, प्रेमाश्रयी शाखा। मलिक मुहम्मद जायसी इस परंपरा के महान कवि है। इसी प्रकार सगुण, साकार ईश्वर को माननेवाले लोगों की भी दो धाराएँ हुई - राम भक्ति और कृष्ण भक्ति ।

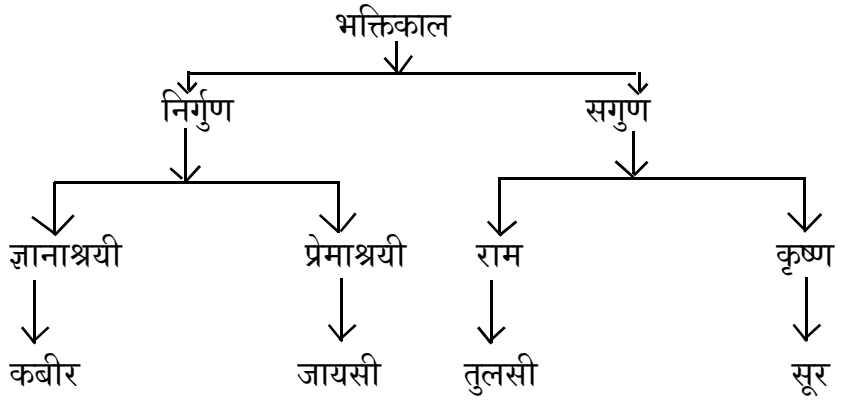

भक्तिकाल की परिस्थितियाँ

राजनीतिक परिस्थिति

राजनीतिक इतिहास की दृष्टि से भक्तिकाल को दो खण्डों में विभाजित कर सकते हैं - 1375 से 1583 तक के प्रथम खण्ड में दिल्ली पर तुग्लक और लोदी वंश के सुल्तानों ने चढ़ाई की थी। द्वितीय खण्ड 1583 से 1700 तक में मुगल वंश के बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर तथा शाहजहाँ ने राज किया था। यहाँ के देशी शासकों ने विदेशी आक्रमणकारियों का विरोध किया था। मुसलमान आक्रमणकारियों ने देशी राजाओं तथा प्रजा पर अत्याचार किया था। अकबर जैसे मुगल शासकों सहिष्णुता और उदारता की नीति अपनाई थी।

सामाजिक परिस्थिति

14वीं और 15वीं शती हिन्दुओं और मुसलमानों में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आदान-प्रदान का युग रहा। वे एक दूसरे के प्रति उदार होने लगे। उनके बीच परस्पर विवाह की प्रथा भी चल पड़ी। इस समय हिन्दुओं की आर्थिक विवशता अत्यधिक थी। उन्हें जीने के लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ा।

धार्मिक परिस्थिति

भक्तिकाल के संत परंपरा के कवि नाथ परंपरा के अनुयायी थे। इस कालखण्ड में भारत में सब कहीं भक्ति की लहर दौड़ रही थी। शंकराचार्य ने भक्ति का मार्ग सुझाया था उसके चलते बौद्ध धर्म का अस्तित्व हिलने लगा। मध्यकाल में वैष्णव भक्ति की धारा तीव्र रूप से बहने लगी। अद्वैतवाद की प्रतिक्रिया के स्वरूप कई वाद भी उभरकर आए। इनमें मध्वाचार्य का द्वैतवाद, रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवाद, निंवार्काचार्य का द्वैताद्वैतवाद, वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवाद आदि शामिल है। इनके अलावा बंगाल में महाप्रभु चेतन्य ने कृष्ण भक्ति का व्यापक प्रचार किया। स्वामी रामानंद ने सीता-राम की उपासना का प्रचार किया।

भक्ति आंदोलन का उदय और विकास

ग्रियर्सन ने भक्ति के विकास के मूल में ईसाई धर्म का प्रभाव माना है। कुछ विद्वानों ने भक्ति को मुस्लिम संस्कृति के संपर्क की देन माना है। लेकिन ये तर्क अनुचित हैं। भारतीय धर्म साधना का एक अभिन्न अंग है, भक्ति। वेदों और पुराणों में निर्गुण तथा सगुण दोनों रूपों की भक्ति का स्वरूप मिलता है। मध्यकाल में वैष्णव भक्ति की धारा दक्षिण भारत के तमिलनाडु के आलवार संतों के कारण व्यापक हुई।

दक्षिण की इस भक्ति आंदोलन को रामानुज के शिष्य रामानंद ने उत्तर की ओर बढ़ाया। रामानंद के शिष्यों में निर्गुण भक्त और सगुण भक्त शामिल हैं। नाथों पर इस काल में शंकराचार्य के सिद्धांतों, योग तथा शैव धर्म के तत्वों का प्रभाव दिखाई पड़ने लगा। नाथ पंथ की धारा को संत ज्ञानेश्वर तथा संत नामदेव ने आगे बढ़ाया। दक्षिण से जो भक्ति उत्तर की ओर प्रवाहित हुई, उसमें नामदेव के विचारों का भी समन्वय हुआ। इस समय मुसलमान शासकों द्वारा ईश्वर की मूर्तियाँ तोड़ी जा रही थी। इसलिए उन्होंने निर्गुण भक्ति को उचित माना। इसके अन्य प्रवर्त्तक थे, कबीरदास।

निर्गुण भक्तिशाखा

निर्गुण भक्ति काव्य (संत काव्य) की विशेषताएँ लिखिए।

1. निर्गुण ब्रह्म की उपासना
2. बहुदेववाद का विरोध या अद्वैतवाद
3. संसार की नश्वरता का वर्णन
4. माया को विरोध
5. सद्गुरु का महत्व
6. जाति-पाँति का विरोध
7. रुढ़ियों और आड़ंबरों का विरोध

8. रहस्यवाद

9. भजन तथा नाम स्मरण

10. श्रृंगार वर्णन तथा विरह की मार्मिक उक्तियाँ

11. लोक संग्रह की भावना

12. नारी का चित्रण

13. माया से सावधान करना

14. दोहा, पद, मुक्तक आदि काव्य रूपों का प्रयोग

15. सधुक्कड़ी जैसी जनभाषा का प्रयोग

संत परंपरा के प्रमुख कवि

नामदेव : संत नामदेव का जन्म महाराष्ट्र के सतारा जिले में 1267 ई. में हुआ था। वे पूर्वाश्रम में डाकू थे। बाद में वे भक्त वन गये और विट्ठल संप्रदाय में दक्षित हुए। वे पहले सगुणोपासक थे। उनके पदों का संकलन आदिग्रंथ में मिलता है।

कबीरदास : भारतीय़ धर्म साधना के इतिहास में महान विचारक एवं प्रतिभाशाली महाकवि के रूप में कबीरदास का स्थान अद्वितीय है। उनके जन्म, मृत्यु आदि के संबंध में भी कई विवाद प्रचलित हैं। 'भक्तमाल' के अनुसार बे रामानंद के शिष्य थे, सिकन्दर लोदी के समकालीन थे। जुलाहा परिवार ने ही कबीर का पाथन-पोषण किया था। उनकी पत्नी का नाम लोई था, और कमाल और कमाली नामक दो बच्चों का भी उल्लेख मिलता है।

'बीजक' कबीर की प्रामाणिक रचना मानी गयी है। इसमें कबीर के उपदेशों का, उनके शिष्यों द्वारा संकलन है। बीजक के तीन भाग हैं - साखी, सबद, रमैनी।

कबीर एकेश्वरवादी रहे है। उनका ईश्वर निराकार, निर्गुण है। उन्होंने 'राम' शब्द का उपयोग किया है। किन्तु उनका राम सगुण राम अर्थात् दशरथ पुत्र राम न होकर परमात्मा का प्रतीक है। उनके अनुसार ईश्वर की प्राप्ति वेदों और पुराणों को पढ़कर संभव नहीं है। वह प्रेमपूर्ण व्यवहार से ही प्राप्य है। उन्होंने शुद्ध भावनात्मक रहस्तवाद का समर्थन भी किया है। उनकी भाषा सधुक्कड़ी थी।

रैदास : रैदास रामानंद के शिष्य परंपरा में थे। मीरा बाई ने इन्हें अपने गुरु के रूप में स्मरण किया है। वे जाति के चमार थे। "रैदास की वाजी" उनकी रचनाओं का संकलन है। उनकी भाषा अवधी, राजस्थानी, खड़ी, बोली, उर्दू-फारसी मिश्रित ब्रज थी।

इसके अलावा नानक देव, दादू दयाल, सरजो बाई, सुन्दर दास, मलूकदास आदि का नाम भी इस दिशा में उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी सूफी काव्य या प्रेमाख्यानक काव्य

हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्यकाल को प्रमुख रूप से दो रूपों में बाँटा गया है-१.निर्गुण भक्ति काव्य २. सगुण भक्तिकाव्य। पूर्व मध्यकाल में निर्गुण भक्ति की दो धाराएँ प्रवाहित होने लगीं। 1.ज्ञानाश्रयी शाखा 2.प्रेमाश्रयी शाखा

ज्ञानाश्रयी शाखा के भक्त कवि 'ज्ञान' को ईश्वर के रूप में महत्व देते थे, जबकि प्रेमाश्रयी शाखावालों ने 'प्रेम' को ईश्वर माना और साहित्य सृजन भी किया। आचार्य शुक्लजी ने इस धारा को प्रेम मार्गी काव्य धारा का लाम दिया तो अन्य विद्वानों ने इसे प्रेम काव्य, प्रेमाख्यान काव्य, रोमान्टिक काव्य आदि नामों से अभिहित किया।

सूफी काव्यों की प्रमूख विशेषताएँ:

1. प्रेम तत्व की प्रधानता
2. लौकिक प्रेम कथाओं का आधार
3. लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम की व्यंजना
4. प्रकृति का विस्तृत वर्णन
5. नायिका का नखशिख वर्णन
6. प्रबंधात्मक काव्य रूप
7. श्रृंगार के संयोग और वियोग पक्ष का विस्तार से अंकन
8. अवधी भाषा का प्रयोग
9. इतिवृत्तात्मक काव्यशैली का प्रयोग
10. चरित्रचित्रण में मानव और मानवेतर-दो प्रकार के चरित्रों की सृष्टि

प्रमुख सूफी कवि

आचार्य शुक्लजी के अनुसार कुतुबन द्वारा रचित 'मृगावती' ही प्रथम प्रेमाख्यान काव्य है। लेकिन डॉ.हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ईश्वरदास द्वारा रचित 'सत्यवती' कथा को तथा डॉ.नगेन्द्र आताइत द्वारा रचित हंसावली' को हिन्दी का प्रथम प्रेमाख्यानक काव्य मानते है।

कुतुबन : कुतुबन सोलहवीं शती के रचनाकार है। 'मृगावती' में उन्होंने चंदगिरी के राजा गणपतिदेव के कुमार राजकंवर तथा मृगावती के बीच के प्रेम का वर्णन किया है।

मंझन : 'मधुमालती' मंझन की प्रसिद्ध रचना है। अवधी भाषा के इस काव्य में प्रेम का उदात्त स्वरुप मिलता है। अन्य प्रेमाख्यानकों के समान इसमें भी नायक के योगी वेश में आने, किसी संदरी को बचाने आदि रुढ़ियों का निर्वाह हुआ है।

मलिक मुहम्मद जायसी :

हिन्दी प्रेमाश्रयी शाखा के महान कवि है, मलिक मुहम्मद जायसी। उनका 'पद्मावत्' प्रेमाख्यान परंपरा की प्रतिनिधि रचना है। 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' उनकी अन्य रचनाएँ हैं।

'पद्मावत्' में उन्होंने सिंहलद्वीप के राजा गंधर्वसेन की पुत्री पद्मावती और चित्तौड के राजा रत्नसेन की प्रेमकथा प्रस्तुत की है। पद्मावती अत्यंत सुंदरी थी और उसके योग्य वर नहीं मिलता था। रत्नसेन हीरामन तोते के मुँह से पद्मावती के सौंदर्य का वर्णन सुना। वह पद्मावती से मिलने के लिए सिंहलद्वीप पहुँचा। गँधर्वसेनको हराकर पद्मावती से शादी भी करता है। दिल्ली के बादशाह पद्मावती को पाने केलिए षड्यंत्र करता है तो पद्मावती उसे पराजित करने में रत्नसेन की सहायता करती है। अन्त में कुंभलनेर के राजा से युद्ध करते हुए रत्नसेन की मृत्यु होती है और दोनों रानियाँ सती होती हैं।

मसनवीं शेली में लिखे गये इस महाकाव्य में बड़ी सुंदरता के साथ जायसी ने सूफी रहस्यवाद का प्रयोग भी किया है। राजा रत्नसेन जीवात्मा का प्रतीक है, पद्मावती परमात्मा का, हीरामन तोता गुरू का, अलाउद्दीन शैतान का और नागमती लौकिक सुखों का प्रतीक है। हिन्दी भक्तिकाल के अन्य महान प्रेमाख्यानक कवियों नें मुल्ला दाऊद (सत्यवती कथा), शेख नबी (ज्ञानदीप) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

सगुण भक्ति शाखा

इसमें ईश्वर को रूप और गुण से युक्त मानते हैं। वैष्णव भक्तों के कारण हिन्दी के सगुण उपासना आगे बढ़ी थी-राम तथा कृष्ण

राम भक्ति शाखा

इसके सर्वप्रथम प्रचारक के रूप में रामानुजाचार्य का नाम आता है। उन्होंने अवतारी राम को अपनी विष्णुभक्ति का आधार मानकर विशिष्टाद्वैत की स्थापना की। रामावृत संप्रदाय के रामानंद, निर्गुण संप्रदाय के कबीर आदि उनके प्रमूख शिष्य थे। उनके दो प्रसिद्ध ग्रंथ हैं-रामार्चन पद्धति, वेष्णव मताब्ज भारकर।

तुलसीदास

रामभक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में गोस्वामी तुलसीदास का नाम आता है। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उनकी कृतियों में जीवन का सर्वांगपूर्ण चित्रण सरल और अकृत्रिम रूप में प्रस्तुत किया गया है। उनका महत्व साहित्यिक, धार्मिक, दार्शनिक तथा सामाजिक क्षेत्रों तक व्याप्त है। उनके समय में काव्य भाषा के दो रूप प्रचलित थे। उन्होंने ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं में काव्य सृष्टि की। साथ-साथ प्रबंध और मुक्त शैलियाँ भी अपनायीं। द्वैत और अद्वैत वादों का मिश्रण तुलसी के राम में मिलेंगे। उस समय निर्गुण और सगुण पंथियों के बीच झगड़ा चल रहा था। तुलसी ने जो राम का स्वरूप लोगों के सामने रखा, उससे इन दोनों मतवालों के बीच समन्वय लाने में एक हद तक वे सफल रहे। दार्शनिक क्षेत्र

में द्वैत और अद्वैत का समन्वय करने पर सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्र में ज्ञान और भक्ति के समन्वय का रास्ता भि खुल गया। ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग का समन्वय करके निर्गुण और सगुण में एकता स्थापित कर, शिव और विष्णु को सम स्थान देकर तथा अन्य मतावलंबियों को उदारता की दृष्टि से देखकर उन्होंने अपने समय की धार्मिक समस्या को हल किया। तुलसी समन्वय की साधना करते हुए एक आदर्श समाज की कल्पना भी करते है। जिसमें समाज के भिन्न-भिन्न अंग अपने वर्ण और आश्रम की मर्यादा का पालन करते हुए लोकाहित की सामान्य साधना में रत रहते हैं।

तुलसीदास की रचनाएँ

तुलसीदास के बारह प्रमुख ग्रंथ हैं-

1. रामलला नह्छु
2. रामाज्ञा प्रश्न
3. जानकी मंगल
4. रामचरित मानस
5. पार्वती मंगल
6. गीतावली
7. कृष्णगीतावली
8. जानकीमंगल
9. विनयपत्रिका
10. बरवै रामायण
11. दोहावली
12. कवितावली

इसके अलावा अग्रदास (रामभजन मंजरी, अष्टयाम); नाभादास (भक्तमाल, रामाष्टयाम); ईश्वरदास (भरत विलाप, अंगदपैज) आदि भी रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि थे।

कृष्ण भक्ति शाखा

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में ही कृष्ण भक्ति का विकास हुआ। निर्गुण पंथियों की कठोर साधना एवं रीतियों से विरक्त आम भारतीय जनता भारतीय पुराण एवं इतिहास में सर्वाधिक वर्णित श्रीकृष्ण की ओर आकृष्ट हुए। इस शाखा के कवियों ने कृष्ण के लोकरंजक रूप को लेकर हिन्दी में सुंदर काव्य लिखे। आचार्य वल्लभ तथा सूरदास एवं अष्टचाप के अन्य कवियों द्वारा कृष्ण भक्ति का बहुत अधिक प्रचार हुआ। कृष्ण भक्त वल्लभाचार्य पुष्टिमार्ग के प्रवर्त्तक थे।

पुष्टिमार्ग

कृष्ण भक्ति का हिन्दी साहित्य में जो रूप मिलता है, वह शुद्धाद्वैत वाद का है। आचार्य वल्लभ का दर्शन शुद्धाद्वैतवाद है। दर्शन के क्षेत्र में जो शुद्धाद्वैतवाद है, वही साधना के क्षेत्र में पुष्टिमार्ग है। यही कृष्ण भक्ति का दार्शनिक आधार है। शुद्धाद्वैत में जगत को सत्य माना जाता है। जीव और जगत् भी ब्रह्म का अंश होने के कारण सत्य है। साधना के द्वारा जीव को आनंद प्राप्त होता है। पुष्चि का अर्थ है अनुग्रह। पुष्टिमार्ग में भगवान की कृपा पर सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। पुष्टिमार्ग में तीन प्रकार के जीव माने जाते हैं- पुष्टि जीव, मर्यादा जीव, प्रवाह जीव। इनमें सबसे प्रमुख पुष्टि जीव हैं क्योंकि भगवान की कृपा पाकर वे उसके साथ नित्य लीला करते हैं। पुष्चिमार्गियों के विचार में श्रीकृष्ण ब्रह्म है। पुष्टिमार्ग की भक्ति प्रेम लक्षण भक्ति है।

अष्ठछाप

पुष्टिमार्ग के सांप्रदायिक विचार और हिन्दी के कुछ कवियों की कृतियों में मिलती हैं। इनको अष्टछाप कहते हैं। महाप्रभु वल्लभाचार्य के पूत्र विट्ठलनाथ ने अष्ठछाप की स्थापना की थी। उन्होंने वल्लभ की मृत्यु के बाद उनके चार शिष्यों को मिलाकर भक्तों की मण्डली बनायी। यह अष्टचाप के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनमें आठ कवि हैं।-कुंभनदास, सूरदास, कृष्णदास, परमानन्ददास, नन्ददास, चतुर्भुजदास, गोविन्दस्वामी छीतस्वामी आदि।

सूरदास

कृष्णभक्त कवियों में सूरदास का स्थान सर्वोच्च है। वे वल्लभाचार्य के शिष्य और अष्टछाप के सर्वोच्च कवि हैं। सूरदास के अनेक रचनाओं में 'सूरसागर' ही उनकी प्रसिद्धि का आधार है। इसकी रचना भागवत के बारहवें स्कन्ध के आधार पर हुई है। सूरसागर गेय नुक्तक काव्य है। सूर की काव्य कला और काव्य संवेदना का उत्कर्ष सूरसागर के पूर्वार्द्ध भाग में कृष्ण के बालरूप का वर्णन, मुरली स्तुति, राधा मिलन, कृष्ण विवाह, भ्रमरगीत आदि प्रसंगों में देखा जा सकता है। कृष्ण के बाल लीला वर्णन में सूर ने वात्सल्य रस को दसवाँ रस तक का स्थान प्रदान करने में सफल हुए हैं। गुलाब राय के अनुसार- "सूर का वात्सल्य वर्णन बाल मनोविज्ञान का माधुर्यपूर्ण अध्ययन है। श्रृंगार के समस्त पक्षों का भी सूर ने वर्णन किया है। वियोग श्रृंगार का चित्रण करनेवाला सूर का भ्रमरगीत हिन्दी काव्य क्षेत्र में अद्वितीय हे।"

सूर की रचनाओं का तत्कालीन सामाजिक जीवन से कोई संबंध नहीं था। वे पहले भक्त और बाद में कवि थे। तुलसी के समान सूर में लोक संग्रह की भावना नहीं मिलती है।

कृष्ण भक्ति शाखा के अन्य प्रमुख कवि

नन्ददास, मीरा बाई, रसखान आदि इस धारा के अन्य श्रेष्ठ कवि हैं।

राम भक्ति की प्रमुख विशेषताएँ :

1. राम का सगुण रूप
2. समत्वयात्मकता
3. लोक संग्रह की भावना
4. भक्त और राम के बीच सेवक-सेव्य भाव
5. सभी रसों का समावेश
6. जीवन की सभी वृत्तियों का चित्रण
7. प्रबंध शैली, गीतिशैली, संवाद शेली का प्रयोग
8. भाषा-अवधी (कम मात्रा में ब्रज का भी प्रयोग)
9. प्रायः सभी छंदों और अलंकारों का प्रयोग

प्रश्न :

1. भक्ति आंदोलन का उदय और विकास
2. सूरदास के साहित्य जीवन पर टिप्पणी लिखिए।
3. राम भक्ति की प्रमुख विशेषताएँ.।

MODULE IV
रीतिकाल (उत्तर मध्यकाल)

1900सामान्यता 1700 से 1900 तक के काल को हिन्दी साहित्य में रीतिकाल के नाम से अभिहित किया जाता है। अपने शुद्ध रूप में रीतिकालीन कविता न तो धार्मिक प्रचार अथवा भक्ति की माध्यम थी और न ही सामाजिक सुधार अथवा राजनीतिक प्रचार से संबद्ध थी। हिन्दी के रीतिकाल का साहित्य जनपथ का साहित्य न होकर राजपथ का साहित्य है।

रीतिकालीन परिस्थितियाँ

रीतिकाल की समय सीमा मोटे तौर पर शाहजहाँ के वैभव पूर्ण शासन की समाप्ति और औरंगसेब के प्रभावपूर्ण शासन के आरंभ से लेकर प्रथम स्वाधीनता संग्राम तक का समय है। राजनीतिक दृष्टि से रीतिकाल मुगलों के शासन वैभव के चरमोत्कर्ष के साथ ही उत्तरोत्तर ह्रास का काल भी है। शाहजहाँ के शासन में मुगल वैभव अपनी चरम सीमा पर था। शाहजहाँ के बाद अशान्ति का दौर शुरू हुआ। अंग्रेज़ों का शासन शुरू होने पर मुगलों के विलासिता के समय का भी अन्त हो गया।

सामाजिक दृष्टि से रीतिकाल को घोर अधःपतन का युग कहा जाता है। सामन्दवादी प्रभाव चारों ओर था। बादशाह, अमीर और सामंत को ख़ुश करने केलिए सेठ-साहूकार, व्यापारी, श्रमिक-किसान आदि का शोषण करते थे। अकाल और भूख़ से जनता पीड़ित थी। नारी के प्रति भोग विलास की दृष्टि प्रधान थी।

रीतिकालीन समय संस्कृति और सभ्यता की दृष्टि से भी हास का युग है। नैतिक बन्धन ढ़ीले पड़ गये थे और दिन-ब-दिन बोद्धिक हास भी हो रहा था। इस युग में अंधविश्वासों, रुढियों और बाह्याडंबरों ने धर्म का स्थान ग्रहण कर लिया। सांस्कृतिक दृष्टि से युग समृद्ध हो रहा था क्योंकि साहित्य और कलाओं को राजाओं का प्रश्रय प्राप्त था।

रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

रीतिनिरूपण : रीति निरूपण का अर्थ है, लक्षण ग्रंथों का निर्माण। रीतिमुक्त कवियों को छोड़कर प्रायः उस काल के सभी कवियों ने लक्षणग्रन्थों की रचनाएँ कीं। उनका उद्देश्य काव्य रसिकों को कवि शिक्षा देने के साथ ही उनका मनोरंजन करना भी था। रीतिकाल में कवि कर्म और आचार्य कर्म दोनों साथ-साथ चलते थे। रीतिबद्ध कवियों ने संस्कृत के काव्यशास्त्र ग्रन्थों को आधार बनाकर काव्यंगों का लक्षण एवं सरल उदाहरण प्रस्तुत किए।

2. श्रृंगारिकता

श्रृंगार वर्णन रीति काव्य का प्रमुख प्रतिपाद्य है। रीतिकालीन कवियों का प्रमुख वर्ण्य विषय नायिका-भेद, नख-शिख, अलंकार आदि का लक्षण देना है, फिरभी उसके माध्यम से श्रृंगार का प्रतिपादन भी किया गया। दो रूपों के श्रृंगार को इन्होंने प्रस्तुत किया-संयोग और वियोग।

3. आलंकारिकता

इस काल में अलंकार साधन से साध्य बन गये। अलंकार शास्त्र ज्ञान के बिना इस काल में कवि को सम्मान प्राप्त नहीं होता था।

4. भक्ति और नीति

रीतिकाल में भक्ति तथा नीति संबंधी पंक्तियाँ यत्र तत्र बिखरी हुई मिल जाती हैं।

5. ब्रज भाषा की प्रधानता : ब्रज भाषा इस युग की प्रमुख साहित्यिक भाषा थी।

6. आलंबन रूप में प्रकृति चित्रण

रीतिकाव्य में प्रकृति का चित्रण आलंबन के रूप में हुआ। प्रकृति का चित्रण नायक और नायिका की मानसिक दशा के अनुकूल ही किया गया है।

7. रीतिमुक्त कविता

रीतिकाल में कुछ कवियों ने रीति की परिपाटी को त्यागकर रीतिमुक्त कविता लिखी।

रीतिकाल की विविध काव्य धाराएँ

रीतिकाल में मुख्य रूप से तीन धाराएँ प्रवाहित है :-

I. रीतिबद्ध :

रीतिवद्ध काव्य धारा में रस, अलंकार, छंद आदि पर रीति निरूपण ग्रंथों अर्थात् लक्षणग्रंथों की रचना हुई। ये कवि आचार्य कहलाए जिनका उद्देश्य कवि शिक्षा था। केशवदास इस परंपरा के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। इनके अलावा मतिराम, भूषण, भिखारी दास ग्वाल, पद्माकर, रसलीन इस धारा के प्रमुख कवि है।

II. रीतिसिद्ध

रीतिसिद्ध कवियों ने रीति निरूपण में संस्कृत काव्यशास्त्र को आधार बनाया है। रीतिसिद्ध कवियों ने रीति निरूपण संबंधी लक्षण ग्रंथ नहीं लिखे, किन्तु लक्षणग्रन्थों के आधार पर आकृष्ट रचनाएँ की। बिहारी इस धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।

III. रीतिमुक्त

रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने काव्य लक्षणों से अलग आत्मानुभूतिपरक स्वच्छंद भावों की रचना की। अतः इसे स्वच्छंद काव्यधारा भी कहा जाता है। घनानंद इस धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि है। आलम, बोधा, ठाकुर आदि अन्य प्रमुख कवि हैं।

रीतिकाल के प्रमुख कवि

आचार्य केशवदास : रीतिकाल के रीतिब्ध काव्य की परंपरा की नीवं डालनेवाले ,सबसे पहले आचार्य केशवदास है। वीरगाथा वर्णन परंपरा को अपनाते हुए वीरसिंह देव चरित तथा जहांगीर जस चन्द्रिका लिघी। साथ ही कविप्रिया और रसिक प्रिया लिखकर रीतिकाव्य की परिपाटी की शुरुआत की। हिन्दी साहित्य में केशव का आचार्य के रूप में जितना महत्व है, उतना कवि के रूप में नहीं। उन्होंने सभी रसो का वर्णन श्रृंगार रस के अधिष्ठित कृष्ण को आलंबन बनाकर किया। केशव की रामचन्द्रिका में मर्यादा पुरुषोत्तम राम का चरित वर्णित है।

आचार्य चिन्तामणि :-

चिंतामणि कामपुर के निवासी रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र थे। भूषण, मतिराम और जटाशंकर - यो तीनों उनके भाई थे। चिन्तामणि के छः ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है - काव्य विवेक, कविकुल कल्पतरु, रसमंजरी, काव्यप्रकाश, पिंगल और रामायण। आचार्य कर्म के साथ साथ उनका कवि कर्म भी महत्वपूर्ण है। रसवादी होने के कारण उनके काव्य में श्रृंगार रस की अधिकता है।

भूषण :-

भूषण हिन्दी के सर्वश्रंष्ठ वीररस प्रधान कवियों में एक है। भूषण की प्रमूख रचनायें हैं - शिवराच भूषण, शिव बावनी, छात्रसाल दशक आदि। भूषण वीर रस के कवि है। आचार्य शुक्लजी लिखते है "भूषण के वीररस का उद्‌गार सारी जनता के हृदय की संपत्ति हुई। भूषण की कविता कवि की कीर्ति से संबंधित अविचल सत्य का दृष्टान्त है।"

बिहारी :-

रीतिकाल के रीतिसिद्ध कवि बिहारी हीन्दी साहित्य के अत्यंत लोगप्रिय कवि है। निम्बार्क संप्रदाय के स्वामी नरहरिदास से उन्होंने सात सौ तेरह दोहे का एक ही ग्रन्थ लिखा जो बिहारी सतसई नाम से प्रसिद्ध है। यह उनकी एकमात्र रचना भी है। वे जयपुर के राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। सतसई में उन्होंने गागर में सागर भर दीया है। उसके एक एक दोहे उज्वल है कि उनके बारे में कहा जाता है- "सतसैये के दोहरे ज्यों नावक के तरि देखने में छोटे लगै धाव करै गंभीर"

बिहारी ने राधा कृष्ण के श्रृंगार और वासनात्मक चित्र खींचे है। अतः उनके संबंध में यह तर्क है कि वे भक्त कवि है या श्रृंगार कवि। बिहारी का षड्ऋतु वर्णन प्रकृति का स्वतंत्र वर्णन है। बिहारी अलंकार वादी नहीं थे। फिर भी उन्होंने स्वच्छन्द रूप से कई अलंकारों का प्रयोग किया है। बिहारी की भाषा व्रजभाषा है।

धनानंद :-

धनानंद रीतिकाल गी रीतिमुक्त धारा के प्रमुख कवि है। उनकी प्रमूख रचनायें है - सुजान सागर, विरहलीला, कोकसार, रसकेली वल्ली आदि। धनानंद मुख्यतः श्रृंगागर रस के कवि है। वियोग श्रृंगार में उनकी रुचि अधिक गई है। उनका वियोग वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक और मनोरम है। इनका प्रेम फारसी काव्य पद्धति या सूफी पद्धति से प्रभावित है। इनकी कविता में सुजान शब्द का बराबर प्रयोग मिलता है जो भक्ति में कृष्ण के लिए और श्रृंगार में नायक के लिए प्रयुक्त माना जा समता है। व्रजभाषा का जितना सुन्दर रूप धनानंद में मिलता है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है।

प्रशन :

1. रीतिकालीन काव्यों की प्रमुख विशेषताएँ ?

2. रीतिबद्ध काव्यधारा पर टिप्पणि लिखिए।